प्रमाणों का महाकवि कालिदास पर प्रभाव–एक समीक्षा

डॉ0 अर्चना जायसवाल

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
Email Id- jaiswalarchana78@gmail.com

यद्यपि संसार के समस्त प्राणी अपने जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं। परन्तु संसार के प्राणियों में मनुष्य को छोड़कर शेष सभी का जीवन उद्देश्य रहित होता है। मनुष्य अपना तथा संसार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहता है और उसी के अनुसार जीवन निर्वाह करना चाहता है। मनुष्य केवल अपने इहलौकिक जीवन के कल्याण हेतु ही प्रयत्नशील नहीं होता, अपितु पारलौकिक जीवन के कल्याण हेतु उपाय भी करता है।

मनुष्य में बुद्धि तत्त्व की विशेषता पायी जाती है। अपनी इसी विशेषता में वह युक्ति पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के द्वारा युक्ति पूर्वक तत्त्व ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न ही 'दर्शन' कहलाता है। 'दर्शन' शब्द संस्कृत में 'दृश्' धातु से कर्त्ता अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– देखने + खोजने का साधन। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से 'दर्शन' का तात्पर्य 'सत्य का अनुसंधान' अथवा 'संत्य की खोज' है। जो निष्पक्ष विचार एवं तर्क के आधार पर जीवन के मूल सत्यों का अनुसंधान करता है वही 'दर्शन' है।

भारतीय दर्शन के इतिहास लेखकों ने समस्त भारतीय दर्शन को दो वर्गों में विभक्त किया है ''आस्तिक'' तथा 'नास्तिक'। आस्तिक दर्शन से तात्पर्य ऐसे दर्शनों से है जिन्हें वेदों की प्रमाणिकता मान्य है और जो वेदों को प्रमाण नहीं मानता वह नास्तिक दर्शन कहलाता है। मनुस्मृति का ''नास्तिको वेदनिन्दकः'' यह कथन इस विषय में प्रायः उद्धृत किया जाता है।

1. न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम को माना जाता है यह दर्शन वस्तुवादी दर्शन है। इसका प्रतिपादन विशेष रूप से युक्तियों द्वारा हुआ है। न्याय दर्शन कुल 16 पदार्थों को मानता है इसके अनुसार इन सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति हो जाती है। न्याय दर्शन के प्रथम सूत्र में जिन 16 पदार्थों का नाम निर्देश (उद्देश्य) किया गया है उनमें प्रथम है–प्रमाण[1] प्रमा के साधन को प्रमाण कहते हैं। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक ✓मा धातु के करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय होकर प्रमाण शब्द निष्पन्न होता है इस व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं। न्याय दर्शन में चार प्रकार के प्रमाण हैं–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, प्रमाण।[2] बौद्ध तथा वैशेषिक दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष तथा अनुमान दो प्रमाण हैं बौद्ध दर्शन निर्विकल्पक ज्ञान को ही प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं सविकल्पक को नहीं। न्याय वैशेषिक के अनुसार भी इन्द्रिय तथा अर्थ के सन्निकर्ष से होने वाला ज्ञान

ही प्रत्यक्ष है। जैन दर्शन में निर्विकल्पक ज्ञान को 'दर्शन' कहा गया है। वैशेषिक ने उपमान तथा शब्द का अनुमान में अन्तर्भाव किया है।[3]

सांख्य योग, जैन दर्शन तीन प्रमाण मानते हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। प्रमेयों की सिद्धि प्रमाणों से होती है।[4] ''प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।'' प्रभाकर मिश्र का मीमांसा सम्प्रदाय पाँच प्रमाण मानता है– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द और अर्थापत्ति को पृथक् प्रमाण माना गया है। अर्थापत्ति प्रमाण का लक्षण है –

''अनुपद्यमानार्थ दर्शनात् तदुपपादकीभूतार्थन्तरकल्पनम् अर्थापत्ति'':

अनुपद्यमान (उत्पन्न न होने वाले) अर्थ को जानकर उसके उपपादक अर्थ की कल्पना अर्थापत्ति (कहलाती) है। भट्टमीमांसक तथा वेदान्ती उपर्युक्त पाँच प्रमाण के अतिरिक्त अभाव नाम का षष्ठ प्रमाण मानते हैं।[5] 'अनुपलब्धि' नामक छठे प्रमाण की कल्पना की गयी है। मीमांसा दर्शन बाह्य सत्ता को मान्यता देता है।[6]

भारतीय दर्शन में उपर्युक्त षड् आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन के रूप में तीन नास्तिक दर्शनों का भी अस्तित्व पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है। अवैदिक दर्शनों में सबसे पहले चार्वाक (लोकायत) का नाम आता है। यह एक भौतिकवादी दर्शन है। इसके आचार्य के रूप में वृहस्पति या चार्वाक का नाम लिया जाता है। यह प्राचीन दर्शन है इसके अनुसार प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। बौद्ध दर्शन दो प्रमाण प्रत्यक्ष और अनुमान को मानता है जैन दर्शन प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम तीन प्रमाण मानता है। इन प्रमाणों के अतिरिक्त पौराणिक परम्परा में 'ऐतिह्य' और 'सम्भव' नामक दो अन्य प्रमाण भी माने गये हैं।

संस्कृत वाड्मय में महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में यद्यपि स्पष्ट रूप से यह उल्लिखित नहीं किया है कि कितने प्रमाण है? किन्तु कुछ प्रमाणों की चर्चा परोक्ष रूप से अवश्य की है। रघुवंश महाकाव्य के दशम सर्ग में देवताओं के द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति के प्रसंग में उन्होनें प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द नामक तीन प्रमाणों का नामोल्लेख किया है।[7]

इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक नाटक के प्रथम अंक में सन्देहास्पद वस्तुओं के ज्ञान के विषय में सज्जनों के अन्तःकरण की वृत्तियों को प्रमाण मानने की चर्चा से स्पष्ट होता है कि जिन वस्तुओं का ज्ञान कराने में उक्त प्रमाण सक्षम नहीं पाते, ऐसे सन्देहजन्य पदार्थों का ज्ञान कराने में सज्जन महापुरूषों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ प्रमाण बनती हैं।[8]

प्रमाणों के स्वरूप और उनकी प्रक्रिया के विषय में भी महाकवि कालिदास ने स्पष्टतः कुछ नहीं लिखा है। विक्रमोर्वशीयम् नामक नाटक के चतुर्थ अंक में उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया में मुख्य रूप से अन्तःकरण के द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान के सिद्धान्त को मानने का संकेत दिया है।[9] इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा मालविकाग्निमित्रम् के प्रथम अंक में प्रमाण रूप में अन्तःकरण की वृत्ति का उल्लेख मिलता है।[10]

कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् नाटक के तृतीय अंक में तो तत्व ज्ञान के विषय में अनुमान को असिद्ध माना है, किन्तु रघुवंश में उसकी सार्थकता को स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट होता है कि उनके मत से अनुमान का प्रमाण्य तभी स्वीकार है जब वह वेदानुकूल हो अन्यथा नहीं। क्योंकि अनुमान प्रमाण की स्वतंत्र सत्ता श्रुतियों और स्मृतियों में स्वीकार नहीं की गयी है।

रघुवंश तथा कुमार सम्भव महाकाव्य में प्राप्त एक पद्य जो दोनों में कतिपय शब्दों के अन्तर के साथ लगभग एक ही शब्दावली में प्रयुक्त हुआ है, उसमें उत्प्रेक्षा के माध्यम से महाकवि ने इन्द्रियार्थसन्निकर्ष की स्थिति का संकेत किया है।[11] इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि महाकवि कालिदास की दृष्टि में चित्त अथवा अन्तःकरण ही किसी वस्तु का ज्ञान कराने में प्रमाण बनता है। रघुवंश महाकाव्य के दशम सर्ग में कालिदास ने अनुमान शब्द का प्रयोग किया है।[12] विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम् नाटकों में अनुमान शब्द का प्रयोग करते समय तर्क शब्द का भी व्यवहार किया गया है।[13] वस्तुतः तर्क शब्द बहुत प्राचीन समय से शास्त्रों में प्रयुक्त होता रहा है।[14] जो यह स्पष्ट करता है कि कालिदास के समय 'आन्वीक्षिकी' के लिए तर्क शब्द प्रयुक्त किया जाता रहा होगा। अनुमान शब्द के दो भेद होते हैं–'स्वार्थानुमान और 'परार्थानुमान'। रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग में एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के षष्ठ अंक में उन्होंने अनुमान प्रमाण का जो दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है वह 'शेषवत्' अनुमान के अन्तर्गत आता है। वहाँ पर पूर्वजन्म के संस्कारों का अनुमान फल (कार्य) के द्वारा किया गया है, जिससे उसमें शेषवत् अनुमान है।[15] क्योंकि शेषवत् अनुमान कार्य से कारण का अनुमान कराता है ऐसा न्यायभाष्य में कहा गया है।[16]

मालविकाग्निमित्रम् नाटक के तृतीय अंक में कालिदास ने आप्त पुरूष के वाक्य को शब्द प्रमाण मानने का संकेत दिया है।[17] उन्होनें शब्द प्रमाण के अन्तर्गत अपौरूषेय वेदों को भी ग्रहण किया है। रघुवंश महाकाव्य में वेद के अर्थ में 'आप्तवाक्' पद का कई बार प्रयोग किया गया है।[18]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कालिदास ने अपनी कृतियों में प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों का स्वरूप तो नहीं बतलाया है, किन्तु विविध वर्णनों के प्रसंग में इनसे सम्बन्धित तथ्यों को अवश्य संकेतित किया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि यद्यपि कालिदास ने स्पष्ट रूप से प्रमाणों में किसी को सर्वप्रमुखता से नहीं स्वीकार किया है, किन्तु उनकी रचनाओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उनके अनुसार सभी प्रमाणों में केवल श्रुति प्रमाण ही प्रबलतम है। क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण केवल बाह्य विषयों का यथार्थ ज्ञान कराने में समर्थ हो पाते हैं, जबकि अतीन्द्रिय परमात्मा का यथार्थ बोध कराने में इनकी गति नहीं है। उसका बोध तो श्रुति प्रमाण द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

अतः भारतीय दर्शनों में किए गए प्रमाण विचारों का महाकवि कालिदास पर व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। कालिदास ने प्रमाणों पर किये गये पूर्ववर्ती विचारों के साथ–साथ उन पर स्वतन्त्र रूप से चिन्तन किया है। अन्तःकरण के प्रमाण पर विशेष बल देते हुए उन्होने अन्तःकरण के प्रमाण को एक स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में स्थापित किया है जो कि भारतीय दर्शनों में कही भी प्रमाण के रूप में उद्धृत नही किया गया है। निः संकोच रूप से यह उल्लेख किया जा सकता है कि महाकवि

कालिदास ने उपर्युक्त अन्य प्रमाणों के अतिरिक्त अन्तःकरण प्रमाण्यवाद की एक नई विचारधारा को स्थापित किया है। जिसे हम कालिदास का स्वतन्त्र सिद्धान्त मान सकते है।

सन्दर्भ

1. ''प्रमाकरणं प्रमाणम्।'' – न्यायदर्शन।
2. ''प्रत्यक्षानुमानोउपमानशब्दाः प्रमाणानि''– (न्यायसूत्र 1.1.6)
3. द्रष्टव्य प्रशस्त तथा न्यायकदली।
4. दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्। त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणदि।। प्रतिविषयाध्यवासों दृष्टंत्रिविधमनुमानाख्यातम्। तल्लि लिङिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्रवचनं तु।। –साङ्ःख्यतत्वकौमुदी (सांख्यकारिका–5)
5. ''अनुपलब्धि श्चोंपलंब्धेरभावः''
6. भारतीय दर्शन, चटर्जी एवं दत्त पृष्ठ सं0 38।
7. प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव। आप्तवागनुमानीयां साध्यं त्वां प्रति का कथा।। – रघुवंश 90/28
8. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु। प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः।। – अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/22
9. अभ्यन्तः करणया मया प्रत्यक्षीकृत वृत्तान्तः खलु महाराजः।–विक्रमोर्वशीय, चतुर्थ अंक पृ0सं0 226
10. (क) सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणवृत्तयः। – अभिज्ञानशाकुन्तलम 1/22
    (ख) अपि कच्चिदुपेयोपायदर्शने व्यापृतं ते प्रज्ञाचक्षुः। – मालविकाग्निमित्र, प्रथम अंक पृ0सं0 33
11. ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्तयो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि। तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा।। – रघुवंश 7/12
12. ता मेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि। तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा।।– कुमार सम्भव 7/64
13. आप्रवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रतिका कथा।– रघुवंश 10/28
14. (क) विदूषक – को देवतारहस्यानि तर्कयिष्यति।– विक्रमो0 पंचम अंक (पृ0सं0 247)
    (ख) तत्वाबबोधैकफलो न तर्कः। –मालविकाग्निमित्र 3/10
    (ग) तच्चानुमानं द्विविधं स्वार्थं परार्थ च।–तर्कभाषा अनुमानखण्ड
15. (क) फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।–रघुवंश 1/20
    (ख) तव सुचरितमङलीयकं नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन।– अभिज्ञानशाकुन्तलम 6/11
16. शेषवत् तत् यत्र कार्येण कारणमनुमीयते।–न्या0भा0 1/1/5
17. ब्कुलावलिका, अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्य इति सुजनवचनं प्रमाणीकुरू। मालविकग्निमित्र तृतीय अंक पृ0134
18. आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा। –रघुवंश 10/28